'वैद्यविनोदसंहिता' समीक्षा

वैद्य गोपीनाथ पारीक 'गोपेश'
अध्यक्ष – राजस्थान आयुर्वेद विज्ञान परिषद्
साहित्य सरोवर संस्था

जयपुर के बसने से पहले इस ढूंढाड़ प्रदेश की राजधानी आमेर थी। संवत् १६७८ में आमेर की राजगद्दी पर मिर्जा राजा जयसिंह आसीन हुए। जयपुर को बसाने वाले सवाई जयसिंह थे। ये आमेर के सिंहासन पर बैठने वाले उक्त जयसिंह के प्रपौत्र थे। अत: मिर्जा राजा जयसिंह को प्रथम तथा सवाई जयसिंह को द्वितीय कहा जाता है। प्रथम जयसिंह को 'मिर्जा राजा' का खिताब दिया गया था। औरंगजेब से छत्रपति शिवाजी को मिलाने वाले ये ही राजा थे। काव्यजगत के प्रसिद्ध कवि बिहारी इन्ही मिर्जा राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। श्रृंगार और शान्त रस के इनके द्वारा रचित दोहे बहुत प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि बिहारी के एक एक दोहे पर मिर्जा राजा एक एक अशर्फी पुरस्कार स्वरूप भेंट करते थे। राजा शिव प्रसाद (सं. १८८०–१९५२) ने अपने लिखे हुये 'भाषा का इतिहास' में भी इसका उल्लेख किया है।

इन मिर्जा राजा जयसिंह प्रथम के आश्रय में अनन्त भट्ट के पुत्र शंकर भट्ट भी रहे थे, जो आयुर्वेद के प्रसिद्ध विज्ञाता थे और एक सफल चिकित्सक भी। राजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह की प्रेरणा से शंकर भट्ट ने 'वैद्यविनोदसंहिता' नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ की रचना की थी। इस अविज्ञात ग्रन्थरत्न के विषय में कुछ जानकारी देना ही इस लेख का ध्येय है। इस ग्रन्थ में ग्रन्थकार ने उल्लेख किया है, कि यह ग्रन्थ मैंने आयुर्वेद के कई ग्रन्थों से सार लेकर तैयार किया है।

यह 'वैद्यविनोदसंहिता' नामक आयुर्वेदीय ग्रन्थ सं. १९७० में खेमराज श्री कृष्णदास बम्बई से प्रकाशित हो चुका है, जिस पर श्री गदाधर त्रिपाठी ने स्थान स्थान पर अपनी टिप्पणी प्रस्तुत की है। इस ग्रन्थ में कुल सोलह उल्लास (प्रकरण) हैं और कुल १७४१ श्लोक हैं। रोगों का क्रम प्राय: माधवनिदान के अनुसार ही है। निदान चिकित्सा से पहले नाड़ीपरीक्षा, मूत्रपरीक्षा भी वर्णित है। रोग का निदान पूर्वरूप वातादि दोषानुसार रोग

लक्षण लिखने के पश्चात् औषधयोग लिखे गये हैं। औषधयोगों में अनुभूत क्वाथ, चूर्ण आदि का उल्लेख करने के पश्चात् एक–दो रसयोगों का भी वर्णन किया गया है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रमुख अनुभव किये गये ही कुछ योग इसमें प्रदिष्ट हैं। ग्रन्थकार व्यर्थ के विस्तार से यहाँ विमुक्त रहे हैं।

आमेर में शिलादेवी माता का मन्दिर है, जिसका निर्माण महाराजा मानसिंह प्रथम ने करवाया था। यहाँ की एक जनश्रुति है– 'सांगानेर को सांगो बाबो, जैपर को हणमान। आमेर की सिल्ला देबी ल्यायो राजा मान'। अतः ग्रन्थ के प्रारम्भ में अम्बा की स्तुति ही मालिनी छन्द से की गयी है। कवि अपने पिता को दिगन्तकीर्ति और प्रथित प्रभाव वाले कह कर स्वयं को शास्त्र एवं काव्य में प्रवीण के रूप में प्रस्तुत करता है –

अनन्तनामा हि दिगन्तकीर्ति

श्रीगौड़वंशः प्रथितप्रभावः।

तदात्मजः शंकर नामधेयः

शास्त्रेषु काव्येषु परं प्रवीणः।।

यह उपजाति छन्द है। इस ग्रन्थ में इसी छन्द का अधिकाधिक उपयोग भलीभाँति हुआ है, जो कवि के शास्त्रज्ञान के साथ साथ काव्य से सम्बन्धित छन्दों के ज्ञान को भी प्रदर्शित करता है। जिस छन्द में एक पाद इन्द्रवज्रा छन्द का हो और शेष तीन पाद उपेन्द्रवज्रा के हों अथवा एक पाद उपेन्द्रवज्रा का हो और शेष तीन पद इन्द्रवज्रा के हों वह छन्द उपजाति छन्द होता है। दो छन्दों के मेल से बने हुये इस छन्द के द्वारा कवि यह भी सिद्ध करना चाहता है, कि अनेक ग्रन्थों के मेल से इस ग्रन्थ को तैयार किया है। ग्रन्थकर्त्ता का कथन है –

हारीतपाराशरसुश्रुतानां

संगृह्य सारं विधिवत् समासात्।

सौख्याय रोगार्दितमानवानां

विधीयते वैद्यविनोद एष।।

इन अनेक योगों में से भी जो प्रयोग अनेक बार अनुभव में ला कर, जिनसे चिकित्सा में सफलता प्राप्त की हैं, उन्हें ही यहाँ लिखा गया है–

ये ये प्रयोगा बहुशोऽनुभूता–

स्ते ते मया संल्लिखिता विमृश्य।

अपने आश्रयदाता राजा जयसिंह और उनके पुत्र प्रेरणा–प्रदाता रामसिंह का ग्रन्थ के प्रारम्भ में संक्षिप्त तथा सारगर्भित परिचय प्रस्तुत कर उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की गयी है–

राजाधिराजो जयसिंहवीरः

ख्यातः पृथिव्यां महनीयकीर्तिः।

प्रतीपभूपालनिवारणेन

प्रतापपुंजोज्ज्वलदग्निकल्पः।।

तदात्मजो रामसमानसारो

नाम्ना चिरायुर्नृपरामसिंहः।

रूपेण दानेन पराक्रमेण

तिरस्कृतानंगसुरद्रुमेन्द्रः।।

संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध आचार्य राजशेखर ने अपनी 'काव्यमीमांसा' में एक बात का उल्लेख किया है कि–'सर्वोऽपि परेभ्य एव व्युत्पद्यते' अर्थात् प्रत्येक ग्रन्थकार अपने पूर्ववर्ती ग्रन्थकार से आधार लेकर चलता है। पूर्ववर्ती ग्रन्थ उत्तरवर्ती ग्रन्थकार के प्रेरणास्रोत होते हैं। वह मधुमक्षिका वृत्ति स्वीकार कर अपने ग्रन्थ को अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास करता है। चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली, योगरत्नाकर आदि इसी प्रकार के संग्रहग्रन्थ को अपनी स्वतंत्रशैली में निबन्ध किया है। इसमें स्वविवेक से कई स्थलों का सुधार करते हुए इसे यथाशक्य मौलिकता प्रदान की गयी है।

संस्कृत के मूर्धन्य कवि कालिदास ने तथा हिन्दी के मूर्धन्य कवि तुलसीदास ने भी इस पथ का कई स्थलों पर अनुसरण किया है। दोनों ने अपने पूर्ववर्ती साहित्य को निचोड़ कर अपने काव्यों को अलङ्कृत तथा समृद्ध बनाया है, किन्तु दूसरे कवि की ली गयी बात को ये दोनो महाकवि इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं, कि उसमें चार

चाँद लग जाते हैं, नवीनता आ जाती है। बात उधार ली हुई न होकर निजी बन जाती है। ऐसा ही कुछ वैद्यविनोदसंहिता में देखने को मिलता है।

योग, योजना और युक्ति तीनों पर्यायवाची है। प्रत्येक योग की योजना करने पर युक्ति का सहारा लिया जाता है। अर्थात् युक्तिपूर्वक योग की योजना करनी चाहिये। सभी शास्त्रीय योग अपने आप में पूर्ण होते हैं, उनमें किसी प्रकार का हेर-फेर करने की आवश्यकता नहीं होती। फिर भी विज्ञ वैद्य यदि आवश्यकता समझे तो वह उन योगों में से किसी द्रव्य को निकाल सकता है और किसी अन्य द्रव्य को समाविष्ट कर सकता है।

ज्वरोपचार में 'अहिमं सलिलं सुलंघनं निलयं वातनिवर्तनोचितम्' कह कर नवज्वर में पाचन औषध की उपयोगिता प्रदर्शित करते हुये सुश्रुतसंहिता में कथित वातज्वर लक्षण के उपरान्त तस्यौषधम् में अपने अनुभूत मात्र दो क्वाथ लिखे गये हैं। चक्रदत्त में निर्दिष्ट किरातादि क्वाथ को यहाँ भूनिम्बादि कर दिया गया है। भूनिम्ब भी किरात (चिरायता) का ही नाम है, किन्तु जिस नाम से प्रथम द्रव्य का उल्लेख होता है, उसी नाम के आगे आदि लगाकर उससे औषध का नामकरण करने की परिपाटी है। उक्त किरातादि क्वाथ के सभी दस द्रव्यों को भूनिम्बादिक्वाथ में सम्मिलित करते हुये एक पुष्करमूल को सम्मिलित कर कुल ग्यारह द्रव्य कर दिये हैं। हृदय और फुफ्फुसों को बल देने वाले वातकफशामक ज्वरघ्न पुष्करमूल को सम्मिलित करना उपयुक्त समझा गया । यह है विवेकपूर्ण योजना का प्रकार। आगे पित्तज्वर-चिकित्सा में निर्दिष्ट द्राक्षादिक्वाथ के सातों द्रव्य सम्मिलित किये गये हैं, इनमें कोई हेर-फेर नहीं किया गया है।

राजरोग (राजयक्ष्मा) चिकित्सा में निर्दिष्ट चरकोक्त सितोपलादि चूर्ण में भी इस ग्रन्थकार ने वासा जैसे क्षयहर द्रव्य को मिला कर इस योग को अधिक प्रभावी बनाने का प्रयास किया है –

त्वगेला पिप्पली वासा रोचना च सितोपला।

यथोत्तरं द्विगुणितं लेहयेन्मधुसर्पिषा।।

एतच्चूर्णं निहन्त्याशु क्षयरोगं सुदारुणम्।।

कुछ सामान्य प्रयोग-मुष्टियोग जो वैद्यसमाज में प्रायः प्रचलित हैं, उन्हें सरस भाषा में श्लोकबद्ध कर लिखा गया है। उनमें से कुछ उदाहरण स्वरूप ये हैं –

१. कर्मैकं भक्षयेत्प्रातरामवातार्दितो नरः।
एरण्डतैलसंयुक्तां भक्षेयद्वा हरीतकीम्।।

२. पलं तिलानामसितं प्रभाते निहन्ति मेहं बहुमूत्रतां च।।

३. सोमराजीबीजकर्षं पिबेदुष्णेन वारिणा।
भोजनं क्षीरसर्पिभ्यां सर्वकुष्ठैः प्रमुच्यते।।

४. योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठमपोहति।।

५. अश्वत्थस्य त्वचाक्षारं पिप्पलीगुडसंयुतम्।
खादेत्कर्षप्रमाणेन जीर्णश्लेष्महरं परम्।।

६. रसांजनं क्षौद्रयुतं मूलं तण्डुलीयकम्।
तण्डुलाम्बुयुतं पानं सर्वप्रदरनाशनम्।।

७ वाजिगन्धां प्रभाते सितामधुघृतप्लुताम्।
पलप्रमाणां संगृह्य मासात्स्यात् स्थविरो युवा।।

इन प्रयोगों के अतिरिक्त बहुत से उपयोगी प्रयोग इस ग्रन्थ में संग्रहित हैं। ग्रन्थ के अन्त में औषधनिर्माण विषयक आवश्यक जानकारी भी प्रस्तुत की गयी है। पथ्य–व्यवस्था, मान–परिभाषा, द्रव्यगुण, द्रव्ययोजना आदि विषयों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। ग्रन्थ की पुष्पिका में कहा गया है, कि यह सिद्धिदायिनी चिकित्सा सज्जनों के चित्त को सदा आनन्द देने वाली हो–

भट्टानन्तात्मजस्येयं शंकरस्य कृतिः सताम्।
आनन्दयतु चित्तानि चिकित्सा सिद्धिदायिनी।।